रूसी कहानी

अलेक्सान्द्र पूश्किन

डाकचौकी का चौकीदार

डाकचौकी का चौकीदार (रूसी कहानी) : अलेक्सान्द्र पूश्किन

डाकचौकी का चौकीदार (रूसी कहानी) : अलेक्सान्द्र पूश्किन

Dakchauki Ka Chaukidar (Russian Story) : Alexander Pushkin

मुंशी सरकार का

तानाशाह डाकचौकी का

- राजकुमार व्याज़ेम्स्की

डाकचौकी के चौकीदारों को किसने गालियाँ नहीं दी होंगी, किसका उनसे झगड़ा न हुआ होगा? किसने क्रोध में आकर उनसे शिकायत पुस्तिका न माँगी होगी, जिसमें वह अपनी व्यर्थ की शिकायत दर्ज कर सकें: बदमिजाज़ी, बदतमीज़ी और बदसुलूकी के बारे में? कौन उन्हें भूतपूर्व धूर्त मुंशी या फिर मूरोम के डाकू नहीं समझता, जो मानवता के नाम पर बदनुमा दाग़ हैं? मगर, फिर भी, आइए, उनके स्थान पर स्वयम् को रखकर, उनके बारे

में तटस्थता से विचार कर, उनके साथ कुछ इन्साफ़ करें।

डाकचौकी का चौकीदार आख़िर क्या बला है? चौदहवीं श्रेणी का पीड़ित-शोषित जीव, ताड़न-उत्पीड़न से जिसकी रक्षा कभी-कभार यह सरकारी वर्गीकरण कर देता है, मगर हमेशा नहीं (अपने पाठकों के विवेक पर आधारित है मेरा यह कथन)। क्या ज़िम्मेदारी है इस प्राणी की जिसे राजकुमार व्याज़ेम्स्की व्यंग्य से ‘तानाशाह’ कहता है? यह कालेपानी की सज़ा तो नहीं? न दिन में चैन, न रात में। उबाऊ सफ़र से संचित पूरे क्रोध को मुसाफ़िर इस मुंशी-चौकीदार पर उँडेल देता है। चाहे मौसम ख़राब हो, या रास्ता ऊबड़-खाबड़, कोचवान ढीठ हो या फिर घोड़े ज़िद्दी हों– दोष है सिर्फ चौकीदार का। उसके जीर्ण-शीर्ण झोंपड़े में प्रवेश करते ही मुसाफ़िर उसे यूँ देखता है, जैसे किसी शत्रु को देख रहा हो। अगर इस बिन बुलाए मेहमान से शीघ्र छुटकारा मिल जाए तो सौभाग्य समझिए, और यदि घोड़े न हों तो? ...या ख़ुदा! कैसी गालियाँ, कैसी धमकियाँ सुनने को मिलती हैं। बारिश और कीचड़ में उसे आँगन में भागना पड़ता है, तूफ़ान में, भीषण बर्फीले मौसम में उसे ड्योढ़ी पर जाना पड़ता है, ताकि क्रोधित मेहमान की चीखों और घूँसों से पल भर को राहत मिले।

जनरल आता है, थरथर काँपता हुआ चौकीदार उसे अंतिम दो “त्रोयका” दे देता है, और डाकगाड़ी भी। जनरल रवाना हो जाता है, बिना धन्यवाद दिए। पाँच मिनट बाद घण्टी की आवाज़ और घुड़सवार संदेशवाहक उसके सामने मेज़ पर अपना यात्रापत्र फेंकता है...

यह सब भली भांति देखने पर हृदय उसके प्रति क्रोध के स्थान पर सहानुभूति से भर जाता है। कुछ और शब्द: पिछले बीस वर्षों से मैं रूस के चप्पे-चप्पे का सफ़र कर चुका हूँ, सभी राजमार्गों से परिचित हूँ। कोचवानों की कई पीढ़ियों को जानता हूँ। डाकचौकी का शायद ही कोई चौकीदार होगा, जिसे मैं नहीं जानता। शायद ही ऐसा कोई होगा, जिससे मेरा पाला नहीं पड़ा। यात्राओं के दौरान हुए दिलचस्प अनुभवों को शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहता हूँ। अभी सिर्फ यही कहूँगा: डाकचौकी के चौकीदारों के वर्ग की समाज में एकदम गलत छबि बनाई गई है। ये अभिशप्त चौकीदार वास्तव में बड़े शांतिप्रिय किस्म के होते हैं, स्वभाव से सेवाभावी, मिलनसार, नम्र, धन का कोई लोभ नहीं। उनकी बातचीत से (जिसे मुसाफ़िर अनसुना कर देते हैं) कई दिलचस्प और ज्ञानवर्धक बातें पता चलती हैं। जहाँ तक मेरा सवाल है, तो मैं स्वीकार करता हूँ, कि राजकीय कार्य से जा रहे छठी श्रेणी के किसी कर्मचारी से बातें करने के स्थान पर मैं इन चौकीदारों की बातें सुनना ज़्यादा पसन्द करता हूँ।

अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि चौकीदारों की जमात में मेरे परिचित हैं। सचमुच उनमें से एक की स्मृति तो मेरे लिए बहुमूल्य है। परिस्थितिवश हम एक दूसरे के निकट आए थे और अब उसी के बारे में मैं अपने प्रिय पाठकों को बताने जा रहा हूँ।

सन् 1816 के मई के महीने में मुझे प्रदेश के एक मार्ग पर जाने का मौका मिला जो अब नष्ट हो चुका है। मैं एक छोटा अफ़सर था, किराए की गाड़ी पर चलता था और दो घोड़ों का किराया दे

सकता था। इस कारण चौकीदार मुझसे शिष्टता से पेश नहीं आते, और अक्सर मुझे वह लड़कर ही मिलता था, जिसका, मेरे हिसाब से मैं हकदार था। जब मेरे लिए तैयार की गई 'त्रोयका' वह ऐन वक्त पर किसी बड़े अफ़सर को दे देता तो जवान और तुनकमिजाज़ होने के कारण मैं चौकीदार के कमीनेपन एवम् तंगदिली पर खीझ उठता। इस बात से भी मैं कितने ही दिनों तक समझौता न कर पाया कि गवर्नर को भोजन परोसते वक्त यह पक्षपाती, दुष्ट सेवक मुझे कुछ भी परोसे बगैर बिल्कुल मेरे सामने से ही खाद्य-पदार्थ ले जाता। आज ये सब बातें मुझे तर्कसंगत प्रतीत होती हैं। सचमुच, यदि 'हैसियत का सम्मान करें' के स्थान पर 'बुद्धि का सम्मान करें' कहावत लागू होती तो न जाने हम लोगों का क्या हाल हुआ होता? कैसे-कैसे वाद-विवाद उठ खड़े होते: तब सेवक किसे पहले भोजन परोसते? मगर, मेरी कहानी की ओर चलें।

गर्मी और उमस-भरा दिन था। स्टेशन से तकरीबन तीन मील पहले बूँदाबाँदी शुरू हुई, मगर एक ही मिनट में धुआँधार बारिश ने मुझे पूरी तरह भिगो दिया। डाकचौकी पर पहुँचते ही सबसे पहला काम था – कपड़े बदलना और दूसरा – चाय का ऑर्डर देना।

"ऐ दून्या!" चौकीदार चीखा, "समोवार रख और मलाई ले आ।" इतना सुनते ही दीवार के पीछे से लगभग चौदह साल की एक लड़की बाहर निकली और आँगन की ओर दौड़ गई। उसकी सुन्दरता को देख मैं स्तब्ध रह गया।

"क्या यह तुम्हारी बेटी है?" मैने चौकीदार से पूछ लिया।

"बेटी है," कुछ स्वाभिमान मिश्रित गर्व से उसने उत्तर दिया। "हाँ, इतनी समझदार, इतनी चंचल है, बिल्कुल अपनी स्वर्गवासी माँ पर गई है।"

अब वह अपने रजिस्टर में मेरे सफ़रनामे की जानकारी लिखने लगा, और मैं उसकी छोटी-सी मगर साफ़-सुथरी झोंपड़ी की दीवारों पर टँगी तस्वीरें देखने लगा। तस्वीरें थीं पथभ्रष्ट पुत्र के बारे में। पहली तस्वीर में टोपी पहने एक बुज़ुर्ग उत्साहपूर्वक अपने पुत्र को बिदा करता दिखाया गया था। पुत्र बिना देर किए पिता का आशीर्वाद और रुपयों से भरी थैली लेता है। दूसरे चित्र में चटख रंगों में नौजवान आदमी के पतन का किस्सा था। वह मेज़ पर बैठा है, झूठे चापलूस मित्रों और बेशर्म औरतों से घिरा हुआ। अगली तस्वीर में निर्धन हो चुका नौजवान एक कमीज़ और तिकोनी टोपी पहने सूअर चराता और उन्हीं के बीच भोजन करता दिखाया गया था। उसके चेहरे पर गहरी पीड़ा एवम् पश्चात्ताप के लक्षण दिखाई दे रहे थे। अन्त में चित्रित थी पिता के पास उसकी वापसी। सहृदय बूढ़ा वही कोट और टोपी पहने बाँहे फैलाए उसकी ओर भाग रहा है। पथभ्रष्ट बेटा घुटनों के बल खड़ा है। पृष्ठभूमि में रसोइया मोटी-तगड़ी भेड़ को काट रहा है, तो बड़ा भाई नौकर से इस आनन्दोत्सव का कारण पूछ रहा है। हर तस्वीर के नीचे सुन्दर जर्मन कविताएँ लिखी थीं। यह सब आज भी मेरे दिमाग़ में ताज़ा है – फूलों के गमले, फूलदार परदों वाली चारपाई जैसी अन्य चीज़ों को भी मैं भूला नहीं हूँ।

याद है गृहस्वामी की – लगभग पचास वर्ष का फुर्तीला, तरोताज़ा तबियत का बूढ़ा, लम्बा हरा कुर्ता पहने जिस पर फीतों से तीन मेडल लटके हुए थे।

मैं अभी अपने पुराने कोचवान का हिसाब कर ही रहा था कि समोवार लिए दून्या आ धमकी। उस जवान, शोख़ लड़की ने दूसरी ही नज़र में भाँप लिया कि उसका मुझ पर क्या प्रभाव पड़ा है। उसने अपनी बड़ी-बड़ी नीली आँखें झपकाईं। मैं उससे बातें करने लगा। वह बेझिझक मेरे प्रश्नों के उत्तर दे रही थी, जैसे कि उसने भी दुनिया देखी है। उसके पिता को मैंने शराब का प्याला पेश किया, दून्या को चाय दी और हम तीनों इस तरह बातें करने लगे मानो सदियों से एक-दूसरे को जानते हों।

घोड़े कब से तैयार थे, मगर चौकीदार एवम् उसकी बेटी से बिदा लेने का मेरा मन ही नहीं हो रहा था। आख़िरकार मैंने उनसे बिदा ली। पिता ने मेरी यात्रा शुभ होने की कामना की। बेटी मुझे गाड़ी तक छोड़ने आई। ड्योढ़ी में मैं रुका और उसका चुम्बन लेने की अनुमति माँगी। दून्या राज़ी हो गई...अनेक चुम्बन गिनवा सकता हूँ, जब से मैं यह सब करने लगा, मगर उनमें से एक भी इस चुम्बन जैसा दीर्घ, इतना प्यारा प्रभाव मुझ पर न छोड़ सका।

अनेक वर्ष बीत गए, और परिस्थितियाँ मुझे फिर उसी मार्ग पर, उन्हीं स्थानों पर ले आईं। मुझे बूढ़े चौकीदार और उसकी बेटी की याद आ गई और यह सोचकर मैं ख़ुश हुआ कि दुबारा उसे

देख सकूँगा। मगर, मैंने सोचा, हो सकता है कि बूढ़े चौकीदार का तबादला हो गया हो, शायद दून्या की शादी हो गई हो। उनमें से किसी एक की मृत्यु का ख़याल भी मेरे मन में आया और मैं आशंकित होकर डाकचौकी के निकट आया।

घोड़े डाकचौकी के पास रुक गए। कमरे में घुसते ही मैं पथभ्रष्ट पुत्र की कहानी वाली तस्वीरों को पहचान गया। मेज़ और चारपाई भी पुराने स्थानों पर ही रखे थे, मगर खिड़कियों में अब फूल नहीं थे और हर चीज़ बेजान, बदरंग नज़र आ रही थी। चौकीदार मोटा कोट ओढ़े सो रहा था। मेरे आगमन ने उसे जगा दिया। वह उठकर खड़ा हो गया...यह बिल्कुल सैम्सन वीरिन ही था, मगर वह कितना बूढ़ा हो गया था! जिस वक्त वह अपने रजिस्टर में मेरा सफ़रनामा लिखने की तैयारी कर रहा था, मैं उसके सफ़ेद बालों, बढ़ी हुई दाढ़ी वाले चेहरे पर उभर आई गहरी झुर्रियों और झुकी हुई कमर की ओर देखता रहा और अचरज किए बिना न रह सका कि केवल तीन या चार वर्षों के अन्तराल ने एक हट्टे-कट्टे आदमी को किस कदर जर्जर और बूढ़ा बना दिया था।

“तुमने मुझे पहचाना?” मैंने उससे पूछा। “हम तो पुराने परिचित हैं।”

“हो सकता है,” उसने बड़ी संजीदगी से उत्तर दिया। “यह रास्ता काफ़ी बड़ा है, कितने ही मुसाफ़िर मेरे यहाँ आते-जाते रहते हैं।”

“तुम्हारी दून्या अच्छी तो है?” मैं कहता रहा। बूढ़े ने नाक-भौंह

चढ़ा ली। “ख़ुदा जाने,” उसने जवाब दिया।

“शायद, शादी हो गई है उसकी।” मैंने कहा।

बूढ़े ने यूँ जताया जैसे कि उसने मेरी बात सुनी ही न हो और फुसफुसाकर मेरा सफ़रनामा पढ़ता रहा। मैंने प्रश्नों की बौछार रोककर चाय लाने की आज्ञा दी। उत्सुकता ने मुझे परेशान करना शुरू कर दिया था और मुझे उम्मीद थी कि शराब के एक दौर से मेरे पुराने परिचित की ज़ुबान खुल जाएगी।

मैं ग़लत नहीं था। बूढ़े ने पेश किए गए गिलास को लेने से इनकार नहीं किया। मैंने देखा कि ‘रम’ ने उसकी संजीदगी को भगा दिया है। दूसरा गिलास पीते-पीते वह बतियाने लगा। वह अब या तो मुझे पहचान गया था या पहचानने का नाटक कर रहा था, और उससे मुझे वह किस्सा सुनने को मिला जिसने मुझे हिलाकर रख दिया।

“तो, आप मेरी दून्या को जानते थे?” उसने शुरुआत की। “कौन नहीं जानता था उसे? आह, दून्या, दून्या! क्या बच्ची थी! जो भी आता, तारीफ़ ही करता, कोई भी दोष न निकालता। मालकिनें उसे कभी रूमाल, तो कभी कानों की बालियाँ देतीं। मालिक लोग जानबूझकर रुक जाते, जैसे दोपहर या रात का भोजन करना चाहते हों। मगर असल में सिर्फ इसलिए कि उसे ज़्यादा देर तक देख सकें। कोई मालिक कितना भी गुस्से में क्यों न हो, उसे देखते ही शान्त हो जाता, और मुझसे भी प्यार से बातें करने लगता। यकीन कीजिए, साहब, पत्रवाहक या सेना के

सन्देशवाहक तो उससे आधा-आधा घण्टे तक बतियाते रहते। घर तो उसी के भरोसे था। क्या लाना है, क्या बनाना है, सभी कुछ कर लेती थी। और मैं, बूढ़ा मूरख, उसे देख-देख अघाता न था। ख़ुश होता रहता। क्या मैं अपनी दून्या को प्यार न करता था? क्या मैं उसकी देखभाल नहीं करता था? क्या उसका जीना यहाँ दूभर हो गया था? नहीं, मुसीबतों से कोई बच नहीं सकता। भाग्य का लिखा मिट नहीं सकता।"

अब उसने विस्तार से अपना दुखड़ा सुनाया: तीन साल पहले जाड़े की एक शाम को, जब चौकीदार नए रजिस्टर में लाइनें खींच रहा था और उसकी बेटी दीवार के पीछे बैठी सिलाई कर रही थी, एक त्रोयका रुकी और रोयेंदार टोपी, फ़ौजी कोट और शॉल ओढ़े एक मुसाफ़िर ने अन्दर आकर घोड़े माँगे। घोड़े थे ही नहीं। इतना सुनते ही मुसाफ़िर ने आवाज़ ऊँची कर अपना चाबुक निकाला। मगर दून्या, जो ऐसे दृश्यों की आदी थी, फ़ौरन दीवार के पीछे से भागकर आई और प्यारभरे स्वर में मुसाफ़िर से पूछने लगी कि उसे कुछ खाने को तो नहीं चाहिए। दून्या के आगमन का अपेक्षित असर पड़ा। मुसाफ़िर का गुस्सा छू मंतर हो गया। वह घोड़ों का इंतज़ार करने पर राज़ी हो गया और उसने अपने लिए भोजन लाने को कहा। गीली, रोयेंदार टोपी उतारने के बाद, शॉल हटाने के बाद और कोट उतारने के बाद प्रतीत हुआ कि मुसाफ़िर एक जवान, हट्टा-कट्टा, सुडौल, काली छोटी-छोटी मूँछों वाला घुड़सवार दस्ते का अफ़सर है। वह चौकीदार के निकट पसर कर बैठ गया और बड़ी प्रसन्नता से

उससे और उसकी बेटी से बतियाने लगा। भोजन परोसा गया। इसी बीच घोड़े भी लौट आए और चौकीदार ने आज्ञा दी, कि उन्हें फ़ौरन, बिना दाना-पानी दिए, मुसाफ़िर की गाड़ी से जोत दिया जाए। मगर जब वह अन्दर आया तो उसने देखा, कि नौजवान वहीं, बेंच पर लगभग बेहोश होकर लुढ़क गया है। उसकी तबियत बिगड़ गई थी। सिर दर्द के मारे फ़टा जा रहा था। आगे जाना संभव नहीं था...क्या किया जाए। चौकीदार ने अपनी चारपाई उसे दे दी और यह तय किया गया कि यदि मरीज़ की हालत नहीं सुधरी तो अगली सुबह शहर से डॉक्टर बुलाया जाए।

दूसरे दिन अफ़सर की तबियत और बिगड़ गई। उसका नौकर घोड़े पर सवार होकर शहर से डॉक्टर बुलाने के लिए रवाना हो गया। दून्या ने सिरके में भीगे रूमाल से उसका सिर बाँध दिया और अपनी सिलाई लेकर उसकी चारपाई के पास बैठ गई। चौकीदार की उपस्थिति में मरीज़ एक भी शब्द बोले बिना सिर्फ कराह रहा था। हालाँकि वह दो कप कॉफ़ी पी गया और कराहते हुए उसने दोपहर के भोजन का आदेश भी दे दिया। दून्या उसके निकट से बिल्कुल नहीं हटी। हर पल वह कुछ पीने की माँग करता और दून्या अपने हाथ से बनाए गए नींबू के शरबत का प्याला उसे थमा देती। मरीज़ अपने होंठ गीले करता और हर बार गिलास वापस करते समय आभार प्रकट करने के लिए अपने कमज़ोर हाथों में दून्या का हाथ ले लेता। भोजन के समय तक डॉक्टर भी आ गया। उसने मरीज़ की नब्ज़ देखी। उसके

साथ जर्मन में बातें कीं और रूसी में सबको बताया कि उसे सिर्फ आराम की ज़रूरत है और दो दिन बाद वह जा सकता है। अफ़सर ने डॉक्टर को फ़ीस के तौर पर पच्चीस रूबल दिए और उसे भोजन का निमन्त्रण दे डाला। डॉक्टर मान गया। दोनों ने छक कर खाया, 'वाइन' की पूरी बोतल खाली कर दी और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक एक-दूसरे से बिदा ली।

एक और दिन के बाद अफ़सर बिल्कुल ठीक हो गया। वह बहुत ख़ुश था। लगातार दून्या अथवा चौकीदार के साथ मज़ाक करता, सीटी बजाता, मुसाफ़िरों से बातें करता, उनके सफ़रनामे को रजिस्टर में लिखता और उस भले चौकीदार को उससे इतना प्यार हो गया कि तीसरी सुबह जब वह बिदा लेने लगा तो चौकीदार का मन भर आया।

इतवार का दिन था, दून्या चर्च जाने की तैयारी कर रही थी। अफ़सर को गाड़ी दी गई। उसने चौकीदार से बिदा ली। वहाँ ठहराने एवम् स्वागत सत्कार के लिए उसे भरपूर इनाम दिया। दून्या से भी बिदा ली और उसे चर्च तक, जो गाँव के छोर पर था, गाड़ी में छोड़ देने की दावत दी। दून्या सोच में पड़ गई..."डरती क्यों है?" पिता ने उससे कहा, "मालिक कोई भेड़िया तो है नहीं जो तुझे खा जाएँगे। चर्च तक घूम आ।"

दून्या गाड़ी में अफ़सर की बगल में बैठ गई। नौकर उछलकर पायदान पर चढ़ गया। कोचवान ने सीटी बजाई और घोड़े चल पड़े।

बेचारा चौकीदार समझ नहीं पाया कि अपनी दून्या को अफ़सर के साथ जाने की इजाज़त उसने ख़ुद ही कैसे दे दी थी। वह कुछ देख क्यों नहीं पाया! उस समय उसकी बुद्धि को क्या हो गया था! आधा घण्टा भी नहीं बीता होगा कि उसके दिल में दर्द होने लगा। वह इतना बेचैन हो गया कि स्वयम् पर काबू न रख पाया और गिरजे की ओर चल पड़ा। गिरजे के निकट पहुँचने पर उसने देखा कि लोग अपने-अपने घरों को जा चुके हैं, मगर दून्या न तो ड्योढ़ी में दिखाई दी, न ही प्रवेश-द्वार के पास। वह शीघ्रता से चर्च में घुसा। पादरी प्रतिमा के निकट से बाहर आ रहा था, सेवक मोमबत्तियाँ बुझा रहा था। कोने में बैठी दो बूढ़ी औरतें अभी तक प्रार्थना कर रही थीं। मगर दून्या का वहाँ नामोनिशान न था। बेचारे पिता ने बड़ी कठिनाई से सेवक से दून्या के बारे में यह पूछने का फ़ैसला किया कि वह वहाँ आई थी या नहीं। उसे उत्तर मिला कि नहीं आई थी। चौकीदार अधमरा-सा होकर घर लौटा। सिर्फ एक उम्मीद बाकी थी। हो सकता है, जवानी की चंचलता में दून्या ने अगली डाकचौकी तक जाने का फ़ैसला किया हो, जहाँ उसकी धर्ममाता रहती थी। पीड़ाभरी परेशानी से वह उस त्रोयका के वापस आने का इंतज़ार करने लगा जिसमें उसने बेटी को भेजा था। कोचवान था कि लौटने का नाम ही नहीं ले रहा था। आख़िरकार शाम को वह वापस लौटा– अकेला और बदहवास, दुर्भाग्यपूर्ण सन्देश के साथ, “दून्या अफ़सर के साथ अगली डाकचौकी से आगे चली गई।”

बूढ़ा इस आघात को बर्दाश्त न कर पाया। वह फ़ौरन उसी चारपाई पर गिर पड़ा जिस पर पिछली रात नौजवान फ़रेबी सोया था। अब, सारी बातों पर गौर करने के पश्चात् चौकीदार भाँप गया कि उसकी बीमारी बनावटी थी। वह ग़रीब तेज़ बुखार में जलने लगा। उसे शहर ले जाया गया और उसके स्थान पर दूसरा चौकीदार कुछ समय के लिए नियुक्त किया गया। उस अफ़सर का इलाज करने वाले डॉक्टर ने बूढ़े चौकीदार का भी इलाज किया। उसने चौकीदार को विश्वास दिलाया कि नौजवान एकदम तन्दुरुस्त था, और वह तभी उसकी बुरी नीयत को भाँप गया था। मगर उसके चाबुक के डर से चुप रहा। या तो वह जर्मन सच बोल रहा था, या अपनी दूरदर्शिता की शेख़ी बघार रहा था। मगर उसके कथन से बेचारे मरीज़ को ज़रा भी सान्त्वना न मिली। बीमारी से कुछ सँभलते ही चौकीदार ने डाकचौकी के बड़े अफ़सर से दो माह की छुट्टी माँगी और अपने इरादों के बारे में किसी को एक भी शब्द बताए बिना पैदल ही अपनी बेटी की खोज में चल पड़ा। रजिस्टर देखकर उसने पता लगाया कि घुड़सवार दस्ते का वह अफ़सर मीन्स्की स्मोलेन्स्क से पीटरबुर्ग जा रहा था। जो कोचवान उसे ले गया था उसने बताया, कि दून्या पूरे रास्ते रोती रही थी, हालाँकि ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वह अपनी इच्छा से जा रही हो।

'ईश्वर ने चाहा तो', चौकीदार ने सोचा, 'मैं अपनी भटकी हुई भेड़ को वापस ले आऊँगा'। यह विचार करते-करते वह पीटर्सबुर्ग पहुँचा। इजमाइलोव्स्की मोहल्ले में अपने पुराने परिचित, सेना

के रिटायर्ड अंडर ऑफिसर के यहाँ रुका और अपनी तलाश जारी रखी। शीघ्र ही उसने पता लगाया कि घुड़सवार दस्ते का वह अफ़सर पीटर्सबुर्ग में ही है, और देमुतोव सराय के निकट रहता है। चौकीदार ने उसके घर जाने का निश्चय किया। पौ फटते ही वह उसके मेहमानख़ाने में दाखिल हुआ और हुज़ूर की ख़िदमत में ये दरख़्वास्त की, कि एक बूढ़ा सिपाही उनसे मिलना चाहता है। अर्दली ने, जो कुँए के पास जूते साफ़ कर रहा था, कहा कि साहब सो रहे हैं और वे ग्यारह बजे से पहले किसी से नहीं मिलते। चौकीदार चला गया और निर्धारित समय पर वापस आया। मीन्स्की स्वयम्, लाल टोपी पहने, बाहर आया।

"क्यों भाई, क्या चाहते हो?" उसने पूछा।

बूढ़े का दिल भर आया। उसकी आँखों से आँसू बह निकले और थरथराती आवाज़ में उसने सिर्फ इतना कहा, "हुज़ूर!।।मेहरबानी कीजिए!।।" मीन्स्की ने फ़ौरन उसकी ओर देखा, चीख़ा, उसका हाथ पकड़कर अपने अध्ययन-कक्ष में ले आया और अपने पीछे दरवाज़ा बंद कर दिया। "हुज़ूर!..." बूढ़ा कहता गया, "गाड़ी से गिरा दाना धूल में मिल जाता है, कम-से-कम मुझे मेरी ग़रीब दून्या तो दे दीजिए! आपका दिल तो उससे भर गया होगा, उसे यूँ ही न मारिए!"

"जो हो चुका है, उसे लौटाया नहीं जा सकता," नौजवान ने भावावेश में कहा। "मैं तुम्हारा गुनहगार हूँ और तुमसे माफ़ी माँगता हूँ, मगर ऐसा न सोचना कि मैं दून्या को छोड़ दूँगा। वह

ख़ुश रहेगी, मैं वादा करता हूँ। तुम्हें उसकी ज़रूरत क्यों है? वह मुझसे प्यार करती है, वह अपने पुराने जीवन को भूल चुकी है। जो कुछ हो गया है, उसे न तो तुम भूल पाओगे और न वह भूल सकेगी।" फिर उसके हाथ की आस्तीन में कुछ घुसेड़ते हुए, उसने दरवाज़ा खोला और इससे पहले कि चौकीदार कुछ समझता, उसने अपने आप को रास्ते पर पाया।

बड़ी देर तक वह निश्चल खड़ा रहा। अन्त में उसने देखा कि उसकी आस्तीन में एक लिफ़ाफ़ा है, उसने उसे खोला और उसे दिखाई दिए पाँच-पाँच, दस-दस के कुछ मुड़े-तुड़े नोट। उसकी आँखों से फिर आँसू बह चले – अपमान के आँसू। उसने उन नोटों को ज़ोर से भींचा। उन्हें ज़मीन पर फेंका। जूतों से रौंदा और चल पड़ा।

कुछ कदम आगे जाने के बाद वह रुका। कुछ सोचने लगा...और वापस लौटा।।मगर अब वहाँ नोट थे ही नहीं। शानदार कपड़े पहने एक नौजवान, उसे देखते ही, गाड़ी की ओर भागा, उछलकर गाड़ी में चढ़ गया और चिल्लाया, "चलो!" चौकीदार ने उसका पीछा नहीं किया। उसने वापस अपनी डाकचौकी पर लौटने का निश्चय कर लिया। मगर जाने से पहले कम-से-कम एक बार अपनी बेचारी दून्या को देखना चाहता था। इस उद्देश्य से दो दिनों के बाद वह फिर मीन्स्की के घर आया, मगर अर्दली ने बड़ी गंभीरता से उत्तर दिया कि मालिक किसी से नहीं मिलते और उसका गिरहबान पकड़कर, उसे मेहमानख़ाने से बाहर धकेलकर, धड़ाम् से दरवाज़ा बन्द कर दिया। चौकीदार खड़ा

रहा, खड़ा रहा और वापस चला गया।

उसी शाम वह गिरजे से प्रार्थना करके लितेयनाया रास्ते पर जा रहा था। अचानक उसके सामने से एक शानदार बग्घी गुज़री और चौकीदार ने उसमें बैठे मीन्स्की को पहचान लिया। बग्घी एक तिमंज़िले भवन के प्रवेश-द्वार के ठीक सामने रुकी और अफ़सर अंदर घुस गया। चौकीदार के दिमाग़ में एक ख़ुशनुमा ख़याल तैर गया। वह वापस मुड़ा और कोचवान के निकट आकर पूछने लगा, "किसका घोड़ा है, भाई? कहीं मीन्स्की का तो नहीं?"

"ठीक पहचाना", कोचवान ने जवाब दिया, "मगर तुम्हें इससे क्या?"

"ऐसी बात है : तुम्हारे मालिक ने मुझे यह चिट्ठी उनकी दून्या को देने के लिए कहा था, मगर मैं तो भूल ही गया कि दून्या रहती कहाँ है?"

"यहीं, दूसरी मंज़िल पर। तुम अपनी चिट्ठी बड़ी देर से लाए, भैया, अब तो वह ख़ुद ही उसके पास आए हैं।"

"कोई बात नहीं", धड़कते दिल से चौकीदार ने कहा। "शुक्रिया, बताने के लिए। मैं अपना काम कर लूँगा।" इतना कहकर वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

दरवाज़ा बंद था। उसने घण्टी बजाई। कुछ क्षण तनावपूर्ण इंतज़ार में बीते। चाभी घुमाने की आवाज़ आई। दरवाज़ा

खुला।

“अव्दोत्या सम्सानोव्ना यहाँ रहती हैं?” उसने पूछा।

“हाँ, यहीं”, जवान नौकरानी ने जवाब दिया। “तुम्हें उनकी क्या ज़रुरत है?”

चौकीदार बिना जवाब दिए हॉल में घुसा।

“नहीं, नहीं”, पीछे-पीछे नौकरानी चिल्लाई, “अव्दोत्या सम्सानोव्ना के पास मेहमान हैं।”

मगर चौकीदार बिना सुने आगे बढ़ता गया। पहले दो कमरों में अँधेरा था, तीसरे में रोशनी थी। वह खुले हुए दरवाज़े के निकट पहुँच कर रुक गया। सलीके से सजाए गए कमरे में सोच में डूबा हुआ मीन्स्की बैठा था। दून्या, आधुनिकतम ढंग से सजी सँवरी, उसकी कुर्सी के हत्थे पर यूँ बैठी थी, मानो अपने अंग्रेज़ी घोड़े पर बैठी हो। वह बड़े प्यार से मीन्स्की की ओर देखती हुई अपनी जगमगाती उँगलियों से उसके बालों से खेल रही थी। बेचारा चौकीदार! अपनी बेटी उसे कभी भी इतनी सुंदर प्रतीत नहीं हुई थी। वह ठगा सा उसकी ओर देखता रहा।

“कौन है?” उसने बिना सिर उठाए पूछा। वह ख़ामोश रहा। कोई जवाब न पाकर दून्या ने सिर उठाया...और चीख़ मारकर कालीन पर गिर पड़ी। भयभीत मीन्स्की उसे उठाने के लिए आगे बढ़ा और अचानक दरवाज़े पर बूढ़े चौकीदार को देखकर, दून्या को वहीं छोड़कर गुस्से से काँपता हुआ उसकी ओर बढ़ा।

“क्या चाहते हो तुम?” उसने दाँत पीसते हुए कहा, “हर जगह मेरा पीछा क्यों कर रहे हो, डाकू की तरह? क्या मुझे मार डालना चाहते हो? भाग जाओ!” और उसने अपने मज़बूत हाथ से बूढ़े का गिरहबान पकड़कर उसे सीढ़ियों से धकेल दिया।

बूढ़ा अपने कमरे पर आया। मित्र ने उसे अदालत में फ़रियाद करने की सलाह दी, मगर चौकीदार ने कुछ सोचकर हाथ झटक दिए और पीछे हटने की ठान ली। दो दिनों बाद वह पीटर्सबुर्ग से अपनी डाकचौकी पर वापस आया और अपनी नौकरी करने लगा।

“दो साल बीत गए,” उसने बात ख़त्म करते हुए कहा, “मैं दून्या के बगैर रह रहा हूँ, और उसकी कोई ख़बर नहीं है। ज़िन्दा है या मर गई, ख़ुदा जाने। कुछ भी हो सकता है। न तो वह ऐसी पहली लड़की है और न ही आख़िरी जिसे कि एक मुसाफ़िर फुसला कर भगा ले गया और कुछ दिनों तक अपने पास रखकर फिर छोड़ दिया। पीटर्सबुर्ग में ऐसी बेवकूफ़ नौजवान लड़कियाँ कई हैं, जो आज मखमली पोशाक में हैं, तो कल पैबन्द लगे कपड़ों में सड़क पर झाड़ू लगाती दिखाई देती हैं। जब मैं सोचता हूँ, कि शायद दून्या का भी यही हश्र होगा, तो अनजाने ही उसकी मृत्यु की कामना करने लगता हूँ...”

यह थी मेरे परिचित बूढ़े चौकीदार की कहानी, जिसमें कई बार उन आँसुओं ने विघ्न डाला था, जिन्हें वह अपने कुर्ते की बाँह से यूँ पोंछता था जैसे कि वह दिमित्रियेव की सुंदर लोककथा का

नायक तेरेंतिच हो। ये आँसू उस शराब के परिणामस्वरुप भी बह रहे थे जिसके पाँच गिलास वह कहानी सुनाते-सुनाते गटक गया था। वैसे चाहे जो भी हो, इस कहानी ने मेरे दिल पर गहरा असर डाला। उससे बिदा लेने के बाद भी मैं कई दिनों तक बूढ़े चौकीदार को भूल न सका। गरीब बेचारी दून्या के बारे में सोचता रहा।

कुछ ही दिन पहले, शहर से गुज़रते हुए मुझे अपने दोस्त की याद आई। पता चला कि जिस डाकचौकी पर वह काम करता था, वह अब नहीं रही। मेरे इस सवाल का कि “क्या बूढ़ा चौकीदार ज़िन्दा है?” कोई भी सन्तोषजनक उत्तर न मिला। मैंने उस इलाके में जाने का निश्चय कर लिया और घोड़े लेकर उधर ही गाँव की ओर चल पड़ा। यह शिशिर ऋतु की बात थी। आसमान मटमैले बादलों से घिरा था। नंगे खेतों से होकर, अपने साथ लाल-पीले पत्ते बटोरती हुए ठण्डी हवा बह रही थी। मैं गाँव में सूर्यास्त के समय पहुँचा और डाकचौकी के निकट रुका। ड्योढ़ी में (जहाँ बेचारी दून्या ने कभी मेरा चुम्बन लिया था) एक मोटी औरत आई और मेरे सवालों के जवाब में बोली कि बूढ़ा चौकीदार तकरीबन साल भर पहले मर गया था और उसके घर में एक शराब बनाने वाला रहता है। और वह उसी शराब-भट्टीवाले की बीबी है। मुझे अपनी इस निरर्थक यात्रा और फिज़ूल ही खर्च किए गए सात रुबल्स पर दुख हो रहा था।

“वह कैसे मरा?” मैंने शराब-भट्टीवाले की बीबी से पूछ ही लिया।

“पी-पीकर...” वह बोली।

“उसे कहाँ दफ़नाया है?”

“बस्ती के बाहर, उसकी बीबी की बगल में।”

”क्या मुझे उसकी कब्र तक ले जा सकती हो?”

“क्यों नहीं। ऐ, वान्का! बस, खेल हो गया शुरु बिल्ली से! मालिक को कब्रिस्तान ले जा और चौकीदार की कब्र दिखा दे।”

इतना सुनते ही फटे-पुराने कपड़े पहने लाल बालोंवाला, झुकी हुई कमरवाला एक बालक मेरे पास दौड़कर आया और फ़ौरन मुझे बस्ती के बाहर ले गया।

“तुम मृतक को जानते थे?” उससे रास्ते में यूँ ही पूछ लिया था।

“कैसे नहीं जानता। उसने मुझे गुलेल बनाना सिखाया था... शराबख़ाने से लौटता और हम उसके पीछे-पीछे, चिल्लाते “दादा-दादा! अखरोट!” और वह हमें अखरोट देता। हमेशा हमारे साथ ही घूमता।”

“मुसाफ़िर उसे याद करते हैं?”

“अब तो मुसाफ़िर कम ही आते हैं। मुसाफ़िर ख़ास तौर से इस तरफ़ क्यों मुड़ेगा, और मृतकों से किसी को क्या मतलब है... गर्मियों में एक मालकिन आई थी, उसने बूढ़े चौकीदार के बारे में पूछा था और उसकी कब्र पर भी गई थी।”

“कैसी मालकिन?” मैंने उत्सुकता से पूछा।

“सुंन्दर-सी मालकिन”, बालक बोला। “छह घोड़ोंवाली गाड़ी में आई थी। तीन नन्हे-मुन्नों और आया के साथ। चेहरे पर काला नकाब डाले हुए। और जैसे ही उसे बताया कि बूढ़ा चौकीदार गुज़र चुका है, वह रो पड़ी और बच्चों से बोली, “चुपचाप बैठे रहो, मैं कब्रिस्तान हो आती हूँ।” उसे मैं ले ही जा रहा था मगर मालकिन बोली, “मुझे रास्ता मालूम है।” और उसने मुझे चान्दी का पाँच कोपेक का सिक्का दिया।”

हम कब्रिस्तान पहुँचे। सूनी जगह। कोई बाड़ नहीं। लकड़ी के सलीबों से अटी। एक भी पेड़ की छाया नहीं। ज़िन्दगी में कभी मैंने इतना दयनीय कब्रिस्तान नहीं देखा था।

“यह है बूढ़े चौकीदार की कब्र,” रेत के एक ढेर पर चढ़कर बच्चा बोला, जिस पर ताँबे की प्रतिमा जड़ा काला सलीब खड़ा था।

“मालकिन यहाँ आई थी?” मैंने पूछा।

“आई थी”, वान्का ने जवाब दिया। “मैं उसे दूर से देख रहा था। वह यहाँ खड़ी रही बड़ी देर तक। फिर गाँव में जाकर पादरी को बुला लाई। उसे पैसे दिए और चली गई। और मुझे दिया चाँदी का सिक्का। अच्छी थी मालकिन।”

और मैंने भी बच्चे को पाँच कोपेक का एक सिक्का दिया। अब मुझे न इस यात्रा का गम था और न उन सात रूबल्स का जो दरअसल मैंने इस पर खर्च किए थे।

****

(मूल रूसी भाषा से अनुवाद आ. चारुमति रामदास)